Nikaṣa, Vol.-1, Issue-4, 2012, Pages 30-36 ISSN: 2277-6826

न्यायाचार्य हरिराय और उनके दार्शनिक विचार

प्रमोद कुमार सिंह*

pramodsingh.du@gmail.com

सार

न्याय दर्शन-परम्परा में अनेक ऐसे विद्वान हैं जिनसे आज भी दर्शन समाज एक तरह से अनजान ही है। इन विद्वानों ने न केवल न्याय के सिद्धान्तों का सम्यक् अवलोकन और सुव्यवस्थित अध्ययन किया हुआ है अपितु अपने विचार-व्यापार को ग्रन्थों में उपनिबद्ध भी किया है। किन्तु यथोचित अन्वेषण न किये जाने से अद्यावधि पर्यन्त ये नैयायिक लगभग गुमनाम ही हैं अतः इनकी रचनायें भी दर्शन जगत् में शब्द और ज्ञान व्यापार से या तो सर्वथा परे हैं अथवा बहुत ही कम लेखनी का विषय बनाये गये हैं। फलतः इन आचार्यों द्वारा कृत ग्रन्थों में निहित नितान्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त भी ज्ञानपिपासुजनों की दृष्टिपथ से दूर ही रहे हैं। हरिराय भी इन्हीं गुमनाम नैयायिकों में वर्तमान एक नाम हैं। जिनसे दर्शन जगत बहुत अधिक परिचित नहीं है। इन्हीं हरिराय और उनके दार्शनिक विचारों का यत्किंचित उपस्थापन ही प्रस्तुत शोधपत्र का प्रमुख प्रयोजन है।

प्रस्तावना

दर्शन जगत में अपने प्रमाण-चिन्तन के लिये विशेष रूप से विख्यात न्याय दर्शन के विकास के तीन सोपान हैं- आदि, मध्य और नव्य। आदि न्याय, न्याय दर्शन का प्रारम्भिक युग है जिसमें महर्षि गौतम ने न्याय सूत्रों की रचनाकर इस दर्शन का प्रणयन किया था। मध्य न्याय वह युग है जिसे इस दर्शन का स्वर्ण युग कहा जाता है क्योंकि इसी युग में इस दर्शन का सर्वाधिक विकास हुआ और अनेक महान नैयायिकों का आविर्भाव हुआ। नव्यन्याय-युग, न्याय दर्शन का वह दौर है जिसमें इस दर्शन में अनेक तरह के परिवर्तन, परिवर्धन और प्रयोग दिखलाई पड़ते हैं। वैचारिक टकराव भी सर्वाधिक इसी दौर में दीखता है। लेखन की नई विधा की उत्पत्ति का भी यही दौर था। इस युग में नैयायिक पूर्ण रूप से न्याय के सिद्धान्तों को उपस्थापित करने और अन्यान्य सम्प्रदायों के दार्शनिक विचारों का खण्डन करने की अपेक्षा समत्व भाव का आश्रय लेकर अन्य दर्शनों में विद्यमान तार्किक मतों को भी अपने मत में समावेशित कर स्वसिद्धान्त उपस्थापित किया करते थे। इसी नव्यन्याय युग में आविर्भूत अनेक आचार्यों में से हरिराय भी एक थे।

न्यायाचार्य हरिराय का जन्म कहां हुआ था - यह एक जटिल प्रश्न है, जिसका उत्तर निश्चित रूप से तो कुछ भी नहीं दिया जा सकता है। किन्तु विभिन्न तर्कों और उपलब्ध तथ्यों के आधार पर इस संबन्ध में कुछ अनुमानित दृष्टि अवश्य उपस्थापित किया जा सकता है। इन्होंने स्वयं ही अपने परिवार का अति संक्षिप्त उल्लेख किया है,

* सहायक-प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), बापूधाम काम्प्लेक्स, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-११००२१, दूरवाणी : +९१ ९७१७१८९२४२.

जिसके अनुसार इनके पिता का नाम पण्ड्या गोपाल था और इनके बड़े भाई का नाम पण्ड्या भगवती दास तथा छोटे भाई का नाम पण्ड्या श्रीपति था-

...इति श्रीमत्पण्ड्यागोपालजिपुत्रेण, श्रीमत्पण्ड्याभगवतीदासकनिष्ठेन
श्रीमत्पण्ड्याश्रीपतेर्ज्येष्ठेन श्रीहरिरायेण विरचिता तर्कचन्द्रिका ।[१]

पण्ड्या उपनाम का प्रयोग गुजरात में पाये जाने वाले ब्राह्मणों का एक वर्ग किया करता है। वहां आज भी इस उपाधि वाले ब्राह्मणों की बहुलता दिखलाई पड़ती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि हरिराय का जन्म संभवतः गुजरात में हुआ होगा ।[२] इनका जन्म स्थान निर्धारित करना जितना जटिल है उतना ही सरल इनका समय स्पष्ट करना है। इसका कारण यह है कि इन्होंने अपने जन्म स्थान का उल्लेख तो कहीं नहीं किया है किन्तु अपने समय का उल्लेख स्वयं ही कर दिया है-

वेदबाणमुनीन्द्वब्दे शुक्लभाद्रस्य सप्तमी।
अस्यां हरिरायेण निर्मिता तर्कचन्द्रिका ॥[३]

अर्थात् हरिराय ने १७५४ ईस्वी में अपने तर्कचन्द्रिका नामक ग्रन्थ की रचना की थी। अतः यह भी अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में आविर्भूत हुये होंगे, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।[४] रही बात इनके दार्शनिक विचार की तो, यहां यह बताना समीचीन होगा कि इन्होंने कुल कितनी रचनाएं की अथवा कितने ग्रन्थों का प्रणयन किया इस सम्बन्ध में भी परिवर्ती दार्शनिक इतिहास सर्वथा मौन है। सम्प्रति इनकी एक मात्र दार्शनिक कृति तर्कचन्द्रिका ही उपलब्ध होती है। अतः इनका दार्शनिक विचार अवश्य ही इसी ग्रन्थ पर अवलम्बित होगा।

तर्कचन्द्रिका एक अति स्वल्पकाय ग्रन्थ है, जिसे न्याय दर्शन के प्रकरण ग्रन्थ[५] की कोटि में रखा जा सकता है।[६] क्योंकि इसमें न्याय दर्शन के सिद्धान्तों के साथ-२ वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों को भी आवश्यकतानुसार उपस्थापित किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में भगवान् शिव और गुरु सिद्धनाथ को नमस्कार किया गया है।[७] इस मंगलाचरण की मंगलमय परिपाटी का अनुपालन ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति हेतु किया गया प्रतीत होता है।[८] तत्पश्चात् ग्रन्थ प्रयोजन को अति सरलता से प्रस्तुत करते हुये यह बताया गया है कि न्यायदर्शन के प्रणेता

---

[१] तर्कचन्द्रिका, पृ. १९

[२] श्री हरिराय विरचिता तर्कचन्द्रिका का अध्ययन (लघु शोध-प्रबन्ध), लेखक-प्रमोद कुमार सिंह, पृ. २१-२२

[३] तर्कचन्द्रिका, पृ. १९

[४] श्री हरिराय विरचिता तर्कचन्द्रिका का अध्ययन (लघु शोध-प्रबन्ध), लेखक-प्रमोद कुमार सिंह, पृ. २२-२३

[५] शास्त्रैकदेशसम्बद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम्।
आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः॥ (तर्कभाषा, पृ. २, गजानन शास्त्री मुसलगांवकर कृत व्याख्या)

[६] श्री हरिराय विरचिता तर्कचन्द्रिका का अध्ययन (लघु शोध-प्रबन्ध), लेखक-प्रमोद कुमार सिंह, पृ. २७

[७] हाटकेशं सिद्धनाथं प्रणिपत्य गुरुं तथा। पण्ड्यागोपालपुत्रेण क्रियते तर्कचन्द्रिका ॥ -तर्कचन्द्रिका, पृ. १

[८] मंगलादीनि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि चाध्येतारश्च वृद्धियुक्ता यथा स्युरिति। - महाभाष्य, पस्पशाह्निक, पृ. ८२

आचार्य महर्षि गौतम द्वारा प्रथम सूत्र में निर्दिष्ट प्रमाणादि षोडश पदार्थ[९] ही तर्क हैं[१०] और इन पदार्थों का पूर्णतः विवेचन ही इस ग्रन्थ का पर्तिपाद्य है जो ग्रन्थ में अवस्थित चन्द्रिका पद का लक्षणार्थ है और उद्देश्य भी। इसके अनन्तर सूत्रावस्थित प्रथम पदार्थ - प्रमाण का स्वरूप बताते हुये यह स्पष्ट किया गया है कि प्रमा का करण प्रमाण है।[११] जिसमें यथार्थ अनुभव को प्रमा[१२] और सर्वोत्कृष्ट कारण को करण[१३] बतलाया गया है। यह प्रमाण - प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान के भेद से चार प्रकार का होता है।[१४] एतदरिक्त अन्य प्रमाणों यथा अनुपलब्धि और अर्थापत्ति का अन्तर्भाव भी इन्हीं प्रमाणों में हो जाता है अतः उनकी पृथक प्रमाणान्तरता स्वीकार्य नहीं है ।[१५]

चतुर्विधप्रमाणों में से प्रत्यक्ष वह प्रमाण है जो साक्षात्कारिणी प्रमा का करण हो।[१६] यह प्रत्यक्ष प्रमाण इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष पर अवलम्बित होता है।[१७] अनुमान से अभिप्राय उस प्रमाण से है जो अनुमिति रूपी यथार्थ अनुभव का करण हो।[१८] यह अनुमान व्याप्ति ज्ञान पर अवलम्बित होता है ।[१९] जबकि उपमिति प्रमा का करण उपमान कहलाता है[२०], जो सादृश्य ज्ञान पर अवलम्बित होता है ।[२१] इसी प्रकार शाब्दप्रमिति का करण शब्द प्रमाण है[२२], जो शब्दज्ञानाधारित होता है।[२३] प्रमाण एवं प्रमाण-भेदों का विस्तृत-विवेचनोपरान्त इनके

आवश्यक अनिवार्य अंगों का उपस्थापन भी प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त होता है। प्रमाण निरूपणोपरान्त ग्रन्थकार ने प्रमेय का विशद विवेचन किया है। प्रमेय की परिभाषा तो ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होती है किन्तु प्रमेय-

---

[९] प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानां तत्वज्ञाना-न्निःश्रेयसाधिगमः। -तर्कचन्द्रिका, पृ. १

[१०] तर्काः प्रमाणादि षोडशपदार्थाः। - वही, पृ. १

[११] प्रमाकरणं प्रमाणम्। - वही, पृ. १

[१२] प्रमा च यथार्थानुभवः। -वही, पृ. १

[१३] व्यापारवदसाधारणं कारणं करणम्। -वही, पृ. १

[१४] तच्च प्रमाणं चतुर्विधम्, प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्। -वही, पृ. २

[१५] वही, पृ. ९-१०

[१६] साक्षात्कारप्रमाकरणं प्रत्यक्षम्। - वही, पृ. २

[१७] वही, पृ. २-३

[१८] अनुमितिकरणमनुमानम्। - वही, पृ. ४

[१९] व्याप्तिप्रकारकं यत्पक्षधर्मताज्ञानं तज्जन्यं ज्ञानम् अनुमितिः। - वही, पृ. ४

[२०] उपमितिकरणमुपमानम्। - वही, पृ. ७

[२१] तत्सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानम्। - वही, पृ. ७

[२२] शाब्दप्रमितिकरणं शब्दः। - वही, पृ. ८

[२३] शब्दज्ञानमेव करणम्। - वही, पृ. ८

भेदों का उल्लेख न्याय-सूत्रानुसार ही किया गया है। अर्थात् प्रमेय - आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्ग के भेद से बारह प्रकार के होते हैं।[२४] यद्यपि प्रमेय-भेदों का आधार तो न्याय-सूत्र ही है किन्तु इनका निरूपण सर्वथा नूतन ढंग से किया गया है जो ग्रन्थकार के ज्ञान और सूझ-बूझ का परिचायक है। प्रमेय की चर्चा करने पश्चात् ग्रन्थ में न्याय दर्शन के तृतीय पदार्थ संशय का स्वरूप स्पष्ट करते हुये बताया गया है कि एक ही धर्मी में अनेक विरोधी ज्ञान का होना ही संशय है ।[२५] तत्पश्चात् प्रयोजन का लक्षण देते हुये ग्रन्थकार ने कहा है कि जिसे उद्देश्य बनाकर पुरुष किसी कार्य में अनुरक्त होता है वही प्रयोजन है ।[२६] वह प्रयोजन मुख्य रूप से दुःख-निवृत्ति और सुख-प्राप्ति स्वरूप ही है क्योंकि यही प्रवृत्ति का सर्वप्रमुख कारण है।

दृष्टान्त वह पदार्थ है जिसे वादी और प्रतिवादी विषय के रूप में सुनिश्चित करते हैं ।[२७] यह अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त के भेद से दो प्रकार का होता है। दृष्टान्त की विवेचना करने के पश्चात् ग्रन्थकार ने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये कहा है कि ऐसा अर्थ जिसे प्रामाणिक रूप से स्वीकार किया जाता है वही सिद्धान्त है ।[२८] यह सिद्धान्त सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम के भेद से चार प्रकार का होता है। सिद्धान्त-स्वरूप प्रतिपादनोपरान्त ग्रन्थ में अवयव रूपी पदार्थ का उल्लेख किया गया है। अनुमान के वाक्य का एकदेश अवयव कहलाता है।[२९] यह अवयव प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन रूप से पांच भेदों वाला है।[३०] ग्रन्थ में अवयव पदार्थ के पश्चात् तर्क का निरूपण किया गया है। तर्क के दो लक्षण ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं। पहले लक्षण के अनुसार व्याप्य के आरोप के उपरान्त व्यापक का आरोप करना ही तर्क है।[३१] जबकि दूसरा लक्षण यह कहता है कि अनिष्ट की प्राप्ति होना तर्क है।[३२] इन लक्षणों में से ग्रन्थकार को कौन सा अधिक अभीष्ट है, जब इस पर विचार करते हैं तो ऐसा मालूम पड़ता है कि दूसरा लक्षण उन्हें ज्यादा अभिप्रेत है। क्योंकि द्वितीय लक्षणानुसार 'यदि यह पर्वत अग्नि रहित होता, तब धूम से भी रहित होता' यही तर्क का स्वरूप है। इस उदाहरण में धूमाभाव में वह्न्याभाव रूप व्याप्य का आरोप करके धूमाभाव रूप व्यापक का आरोप किया गया है। इस प्रकार का अनिष्ट प्रसंग ही तर्क है।

---

[२४] आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गाः प्रमेयम्। - तर्कचन्द्रिका, पृ. १०

[२५] एकस्मिन् धर्मिणि विरूद्धानेककोटिकज्ञानं संशयः। - वही, पृ. १७

[२६] यमुद्दिश्य पुरुषः प्रवर्तते तत्प्रयोजनम्। - वही, पृ. १७

[२७] वादिप्रतिवादिनोर्निश्चियविषयो दृष्टान्तः। - वही, पृ. १७

[२८] प्रामाणिकत्वेनाभिगतोऽर्थः सिद्धान्तः। - वही, पृ. १७

[२९] अनुमानवाक्यैकदेशावयवः। वही -, पृ. १८

[३०] अनुमानवाक्यैकदेशावयवाः। ते च प्रतिज्ञादयः पञ्च। - वही, पृ. १८

[३१] व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। -वही, पृ. १८

[३२] अनिष्टप्रसंजनं वा तर्कः। -वही, पृ. १८

तर्क की परिभाषा देने के बाद ग्रन्थकार ने निर्णय के अनिश्चित स्वरूप को निश्चित करते हुये बताया है कि जो ज्ञान निश्चयात्मक होता है वही निर्णय है।[३३] निर्णय प्रमाणों का प्रतिफल है।[३४] निर्णय का स्वरूप व्याख्यायित करने के पश्चात् हरिराय ने वाद की परिभाषा करते हुए लिखा है कि तत्व के जिज्ञासुजनों की कथा ही वाद है।[३५] वाद के उपरान्त जल्प रूप पदार्थ के दो लक्षण प्रस्तुत ग्रन्थ में मिलते हैं। प्रथम यह है कि पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों के साधन से युक्त विजयाभिलाषियों की कथा जल्प है तो दूसरे लक्षण के अनुसार परपक्ष के खण्डन हो जाने पर अपने पक्ष में समाप्त होने वाली कथा ही जल्प है।[३६] जल्प में वादी और प्रतिवादी का मुख्य ध्येय विजय की अभिलाषा और अपने पक्ष को सत्य सिद्ध करने की कामना मात्र ही होती है। तत्व के निर्णय से उनका कोई भी लेना-देना नहीं होता है। जल्प का स्वरूप स्थापित करने के पश्चात् हरिराय ने वितण्डा को व्याख्यायित किया है। वितण्डा से अभिप्राय उस पदार्थ रूपी कथा से है जिसमें अपने पक्ष की स्थापना किये विना ही वादी या प्रतिवादी दूसरे पक्ष में दोष का अन्वेषण करने का प्रयास करता है।[३७] तात्पर्य यह है कि वितण्डा में प्रतिपक्षी अपने पक्ष की स्थापना किये विना ही शास्त्रार्थ में प्रवृत्त होता है, जिसका एकमात्र उदेश्य परपक्ष का खण्डन ही है।

वितण्डा के बाद प्रसंगवश प्राप्त हेत्वाभास रूप पदार्थ का निरूपण किया गया है। यद्यपि इस पदार्थ का निरूपण ग्रन्थकार हरिराय ने प्रमाण पदार्थ का वर्णन करते हुये पहले भी किया था तथापि आवश्यकतानुसार यत्किंचित परिवर्तन के साथ पुनः किया है। ऐसे हेतु जो पक्षधर्मत्व आदि पांच रूपों में से किसी एक रूप से भी हीन हों, वे हेतु के समान आभासित होने से हेत्वाभास कहलाते हैं।[३८] ये हेत्वाभास असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, प्रकरणसम और कालात्ययापदिष्ट भेद से पांच प्रकार के होते हैं। हेत्वाभास के पश्चात् अवशिष्ट पदार्थों-छल, जाति और निग्रहस्थान का प्रतिपादन किया गया है।

अन्य अभिप्राय से प्रयुक्त शब्द का अन्य अर्थ ग्रहण करके दोष दिखलाना छल है।[३९] जबकि अनुचित या अयुक्त उत्तर जाति कहलाती है।[४०] इसी प्रकार पराजय के कारण को निग्रहस्थान कहा जाता है।[४१] अर्थात् वादी या

---

[३३] निर्णयोनिश्चयात्मकज्ञानम्। - तर्कचन्द्रिका, पृ. १८

[३४] निर्णयो निश्चयात्मकं ज्ञानम्। तच्च प्रमाणानां फलम्। - वही, पृ. १८

[३५] तत्त्वबुभुत्सोः कथा वादः। - वही, पृ. १८

[३६] उभयसाधनवती विजिगीषोः कथा जल्पः। परपक्षे दूषिते सति स्वपक्षसाधनावसानो वा जल्पः। - वही, पृ. १८

[३७] स्वपक्षस्थापनाहीनापरपक्षदूषणावसाना कथा वितण्डा। - वही, पृ. १८

[३८] ये तु पक्षधर्मत्वादिरूपेणामेकेनापि रूपेण हीना हेतुवदाभासमानास्ते हेत्वाभासाः। - वही, पृ. १८

[३९] अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्तस्य शब्दस्यार्थन्तरेण दूषणाभिधानं वाक्छलम्। - तर्कचन्द्रिका, पृ. १८

[४०] अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्तस्य असदुत्तरं जातिः। - वही, पृ. १८

[४१] पराजयकारणं निग्रहस्थानम्। - वही, पृ. १८

प्रतिवादी की ऐसी स्थिति, जहां उसे पराजित समझा जाय, निग्रहस्थान का द्योतक है। यह निग्रहस्थान न्यून, अधिक, अपसिद्धान्त, अर्थान्तर, विरोध, मतानुज्ञा अप्रतिभा इत्यादि भेद से अनन्त प्रकार का होता है।

समालोचना

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि न्यायदर्शन के षोडश पदार्थों का सांगोपांग निरूपण हरिराय ने तर्कचन्द्रिका में किया है। यही नहीं, न्यायोक्त प्रथम पदार्थ प्रमाण की विवेचना करने के पश्चात् हरिराय ने प्रमेय पदार्थ के वर्णन प्रसंग में प्रमेय के दो भेद बताते हुये इसी के अन्तर्गत वैशेषिक दर्शन के सप्त पदार्थों - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव का वर्णन भी यथोचित रूप से कर दिया है। यह ग्रन्थकार के न केवल वैशेषिक ज्ञान का द्योतक है अपितु उनकी सामञ्जस्यवादी दृष्टिकोण का भी अभिसूचक है। यही कारण है कि तर्कचन्द्रिका का अवलोकन करते ही इसका पाठक वैशेषिक दर्शन के मन्तव्यों का मनन भी अनायास ही कर लेता है। इस ग्रन्थ में न्याय-वैशेषिक दर्शन के मन्तव्यों से विरोध रखने वाले उन सिद्धान्तों का तो खण्डन किया गया है जो वास्तव में दार्शनिक दृष्टि से समीचीन नहीं हैं, किन्तु अन्य दर्शनों यथा - योग, गीता, उपनिषद् आदि के विरोधी उन मतों का अपने दर्शन में पूर्ण आदर और निष्ठा के साथ समावेश कर लिया गया है जो दार्शनिक सत्यता की धरातल पर असत्यता की ऊँचाइयों से सर्वथा परे हैं।

इस ग्रन्थ में आत्मा इत्यादि कुछ ऐसे विषय हैं, जिनका वर्णन एक से अधिक बार किया गया है, जो इस ग्रन्थ में पुनरुक्ति दोष की ओर इशारा करते हैं, किन्तु यह दोष वर्णन की अनिवार्यता का अंग होने से इस ग्रन्थ के दोषमुक्तता को स्वतः ही सिद्ध कर देते हैं। इसी प्रकार इस ग्रन्थ की कुछ अन्य न्यूनताएं भी हैं, जो अवश्य ही विचारणीय हैं। यह ग्रन्थ न्याय और वैशेषिक दर्शन का सम्मिलित प्रकरण ग्रन्थ है अतः इसकी भाषा में सरलता और स्पष्टता का समावेश होना नितान्त आवश्यक था जिससे सामान्य पाठक भी इसमें विद्यमान सिद्धान्तों का ज्ञान आसानी से कर लेता। किन्तु विशुद्ध नव्यन्याय की शैली से समन्वित अत्यन्त कठिन पदावली का प्रयोग होने से यह ग्रन्थ उक्त लक्ष्य से व्यभिचरित हो गया है। इसी प्रकार कुछ ऐसे पारिभाषिक पद हैं यथा - परीक्षा, अन्वयव्याप्ति, समवाय सन्निकर्ष, विरुद्ध हेत्वाभास इत्यादि - जिनका उल्लेख तो इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है किन्तु न तो इनका लक्षण और न ही इनका निरूपण ग्रन्थ में कहीं किया गया है।

निष्कर्ष

तर्कचन्द्रिका में कतिपय ऋणात्मक पक्षों के वर्तमान होने पर भी तर्क अर्थात् प्रमाणादि षोडश पदार्थों का पूर्णतः प्रकाशन होने से यह ग्रन्थ स्वनाम की सार्थकता को सिद्ध कर रहा है। इसी प्रकार न्याय के साथ-साथ वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों का एक साथ प्रतिपादन होने से यह ग्रन्थ सम्मिलित न्याय वैशेषिक दर्शन का अनमोल रत्नतुल्य है, इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। तर्कचन्द्रिका की भाषा सरल, सुबोध, संक्षिप्त एवं स्पष्ट है जिसमें अत्यल्प शब्दों में अतिगम्भीर विषयों का प्रतिपादन होने से यह ग्रन्थ 'गागर में सागर भरने' जैसी कहावत को चरितार्थ कर रहा है। इस ग्रन्थ पर तर्कभाषा और तर्कसंग्रह जैसे समन्वयवादी ग्रन्थों का प्रभाव

दृष्टिगोचर होता है किन्तु हरिराय ने इन ग्रन्थों के प्रतिपाद्य को सर्वथा नवीन पारिभाषिक पदावली एवं नव्यन्याय-शैली में प्रस्तुत कर इस ग्रन्थ में पूर्णतया नूतनता का संचार करते हुये इसे न्याय-वैशेषिक दर्शन के प्रकरण ग्रन्थों में एक विशिष्ट स्थान पर स्थापित कर दिया है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

१. मिश्र, आद्याप्रसाद (सम्पा.), १९९८. ***तर्कसंग्रहः,*** अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद ।

२. मुसलगांवकर, गजानन शास्त्री (व्या.), १९९५. ***तर्कभाषा,*** चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी ।

३. सिंह, प्रमोद कुमार, २००७. ***श्री हरिराय विरचिता तर्कचन्द्रिका का अध्ययन*** *(लघुशोधप्रबन्ध),* दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

४. त्रिपाठी, हरेराम (सम्पा.), २००१. ***तर्कचन्द्रिका,*** सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

५. त्रिपाठी, जयशङ्कर लाल (व्या.), २००८. ***व्याकरण-महाभाष्यम्,*** चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी ।